शोध मंथन Vol. XIV No.II Apr.-June 2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

कृषक–जीवनः प्रेमचंद के उपन्यास तथा अन्य उपन्यासकार

प्राप्तिः 06.05.2023
स्वीकृतः 20.06.2023

डॉ० पूनम भारद्वाज
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़
ईमेलः *poonambhardwajdr@gmail.com*

22

सारांश

प्रेमचंद के उपन्यासों में किसान जीवन को तथा गाँव को केंद्र में रखकर अनेक समस्याएँ चित्रित हैं। इस समस्याओं का समाधान भी है। भले ही वह समाधान तत्कालीन स्थितियों के अनुकूल सिद्ध नहीं हो पा रहा है। प्रेमचंद को आपत्ति थी कि क्या यह शर्म कि बात नहीं कि जिस देश में नब्बे फीसदी आबादी किसानों की हो, उस देश में कोई किसानों की भलाई का प्रयत्न नहीं करता। प्रेमचंद किसानों की गरीबी का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा और लगान को मानते थे। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा तथा लगान दोनों ही समाप्त हो गए फिर भी किसान आत्महत्या कर रहा है। यह एक विचारणीय प्रश्न है।

मुख्य बिन्दु

प्रेमचंद, किसान, उपन्यास, खेती, जमींदारी प्रथा, खेतिहर मजदूर, गरीबी, शोषण, लगान, समस्या।

प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों में किसान को केन्द्र में रखकर किसी भी उपन्यास की रचना नहीं हुई। द्विवेदी युग में 1908 में महावीर प्रसार द्विवेदी ने अपनी अर्थशास्त्र पर 'संपत्तिशास्त्र' नामक किताब में किसानों की तबाही और कृषि की बर्बादी को लेकर पहली बार निबंध लिखा। जिसमें उन्होंने कहा ''हिंदुस्तान की जमीन की मालिक रियासा (जनता) नहीं अंग्रेजी गवर्नमेंट है वह रियाया से लगान वसूलती है।''[1] प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों को कल्पना जगत से उठाकर यथार्थ की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया। जन जीवन की समस्याओं के अधिक निकट लाने का श्रेय जितना प्रेमचंद को है, उतना अन्य किसी को नहीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– ''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबर्दस्त वकील थे; गरीबों और बेकसों के महत्व के प्रचारक थे। अगर उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ जानना हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों, खोमचों वालों से लेकर बैंकों, गाँव से लेकर धारा–सभाओं तक इतने कौशलपूर्वक और प्रमाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।''[2]

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने किसानों के शोषण का यथार्थ–चित्रण किया है। उनकी दुर्दशा, जमींदारों के अत्याचार, पुलिस के हथकंडे, अफसरों की धांधली, वकीलों की बेइमानी, न्यायाधीशों का

अंधापन आदि का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है। 'प्रेमाश्रम' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें समस्या के साथ ही उसका हल भी है। 'प्रेमाश्रम' में जमींदारों द्वारा अत्याचार करवा कर क्रांति के लिए बीज बोना, किसानों का घर जलाना, चौपायों को चरागाहों में न चरने देना, किसानों के ऊपर बेदखली कर मुकदमे चलाना आदि समस्याओं को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। डॉ० रामविलास शर्मा कहते हैं– ''यह उपन्यास असहयोग आंदोलन के बाद छपा–यह हमारा दुर्भाग्य था। फिर भी उसने स्वाधीनता आंदोलन को दूर करने के लिए उसे एक नई गति देने में किसान समस्या को, आजादि की मूल समस्या के रूप में स्वीकार करने में बहुत बड़ा काम किया है। ऐसा सामाजिक महत्व विरले ही उपन्यासों का होता है।''[3] 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर जैसा पतित चरित्र उनके किसी उपन्यास में नहीं मिलता। पुलिस और साम्राज्यवाद के द्वारा सामंती व्यवस्था को क्षति पहुँचाने का चित्र इस उपन्यास में देखा जा सकता है।

प्रेमचंद के 'कर्मभूमि' उपन्यास में मुख्य रूप से जमीन की समस्या तथा लगान कम करने की समस्या है। इस उपन्यास में जनमा की साम्राज्य विरोधी भावना है। प्रेमचंद के 'रंगभूमि' उपन्यास में कृषि प्रधान गाँव को उजाड़ कर औद्योगिक केंद्र बनाने में, भारत के देशी राज्यों के राजाओं ने अंगेजी सरकार के साथ देने का चित्रण किया गया है। सूरदास, उपन्यास का प्रमुख पात्र है। जो महात्मा गांधी की भांति औद्योगीकरण के विरोध में खड़ा होता है।

प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास में भारतीय कृषक की दीन–हीन दशा का चित्रण है। 'गोदान' में होरी के चित्रण में वे पूर्णतया यथार्थवादी रहे हैं। उपन्यास के केन्द्र में किसान के शोषण की समस्या है। 'गोदान' का नायक होरी किसान है। वह और उसका परिवार दिन–रात कड़ी मेहनत करते हैं, फिर भी होरी का परिवार गरीब हैं। वे अपनी मूलभूत आवश्यकताएं भी ठीक से पूरी नहीं कर पाते। होरी की एक छोटी–सी इच्छा है कि वह एक गाय पालना चाहता है। अपनी इस इच्छा को वह छलछन्द से पूरी भी कर लेता है, लेकिन वही उसकी त्रासदी का मुख्य कारण बनती है। होरी निराश नहीं होता। जब स्थिति कुछ सुधरती है तो वह पुनः अपनी इस इच्छा के लिए किसान से मजदूर बनता है। वहलू–धूप सहन करता हुआ आठ आने रोज की मजबूरी पर ऊसर में से कंकड़ों की खुदाई करता है, और रात को ढिबरी के सामने बैठकर सुतली कातता है। एक दिन होरी को लू लग जाने से स्वास्थ्य खराब हो जाता है। ब्राह्मण धनिया से कहता है कि वह गोदान करा दे। धनिया उठकर अन्दर गई और सुतली बेचकर कमाए गए बीस आने को होरी के ठंडे हाथ पर रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली– ''महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।''[4] होरी अपनी इच्छा पूरी किए बिना ही मर जाता है। इस प्रकार कड़ी मेहनत के बावजूद निरन्तर गरीबी और अपूर्ण आकांक्षाएँ–यही होरी के जीवन का यथार्थ है। वर्तमान भारतीय किसान के जीवन का भी यही यथार्थ है।

वर्तमान अर्थशास्त्री अथवा नेतागण भले ही यह कहें कि भारतीय किसान सम्पन्न हो गया है, लेकिन स्वाधीनता के बावजूद आज भी किसान के जीवन का यथार्थ नहीं बदला है। गोदान का होरी अन्त तक निराश नहीं था, लेकिन प्रेमचन्द अपने यथार्थ अनुभवों के कारण निराश हो गए थे, शायद इलिए ही उन्होंने गोदन को दुखान्त बनाया। प्रेमचंद ने यह महसूस किया कि किसान का शोषण

करने वाले जमींदार राय साहब अमरपाल सिंह, पटवारी लाला पटेश्वरी, पुरोहित दातादीन, दारोगाजी, महाजन झिगुरी सिंह आदि के रहते, होरी मर ही सकता है, सुखी और सम्पन्न तो नहीं हो सकता। वर्तमान में किसान सबसे अधिक अधिकारों से वंचित और उत्पीड़ित है। हल्कू और धिसू माधव जैसे किसान अपनी फसलों व मेहनताने को लेकर आज भी बुरी तरह चिंतित और त्रस्त हैं। ऐसे में प्रेमचंद के सपनों की हिफाजत करने वाला कोई नहीं। आज आजाद भारत में भी लोग नैतिकता, देश–प्रेम और स्वाभिमान को खूँटी पर टांगकर मनमाने ढंग से गरीबों को लूट रहे हैं। आज भी गाँवों में गरीबी, बेरोजगारी, महामारी व बीमारी के चलते लोगों की आकस्मिक मृत्यु हो रही है।

हिंदी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास 'गोदान' माना जाता है। जिसमें किसानों के जीवन के अलग–अलग पहलुओं का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में यह भी अभिव्यक्त किया गया है कि कर्ज एक ऐसी समस्या है जिसका कोई अंत नहीं है। होरी यह कहता है– ''कर्ज वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।''[5] 'गोदान' का होरी भारतीय किसान के संपूर्ण जीवन की समस्त विभीषिकाओं, दुर्बलताओं तथा दुख दर्द को वाणी देता है। 1936 के आसपास राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप स्थिर हो चुका था और यह निश्चित हो गया था कि अब जमींदार अधिक दिन किसान को अपने चंगुल में फंसा कर उसका शोषण नहीं कर सकते। किसान जमीदारों के चंगुल से निकलकर सूदखोर महाजन के जाल में फँसता जा रहा था। जमींदान तो एक था लेकिन महाजन तो अनेक थे। अतः महाजनों के जाल से किसानों का निकलना कठिन था। रामविलास शर्मा कहते हैं– ''भारत के दुःखी दरिद्र किसानों के अनूठे चित्रकार प्रेमचंद को विश्व साहित्य में जगह न मिलेगी तो किसे मिलेगी।''[6]

प्रेमचंद युग में मुख्य रूप से तीन तरह के किसान थे। 'गोदान' में यह तीनों स्तर दिखाई देते हैं। प्रथम, जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार था लेकिन उस पर खेती नहीं करते थे। दातादीन ऐसा ही किसान था। दूसरी श्रेणी के वह किसान थे जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार नहीं होता था। वे दूसरों के खेतों पर काम करते थे। इन्हें ही खेतीहर मजदूर कहते हैं। तीसरी श्रेणी उन किसानों की है, जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार होता था और वे स्वयं अपने खेती में काम करते थे और लगान देते थे। प्रेमचंद ने इन्हें ही वास्तविक किसान का दर्जा दिया है। यही किसान अपनी जमीन, खेत बचाने के लिए संघर्ष करते हैं। हम 'गोदान' के होरी को भारतीय किसान का प्रतिनिधि मान सकते हैं क्योंकि अंततः होरी वह किसान है जिसका मरना निश्चित है।

प्रेमचंद के 'गोदान' का अनुकरण असंभव था लेकिन अन्य उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में कृषक जीवन से संबंधित समस्याओं को उजागर किया है।

कमलाकांत त्रिपाठी का उपन्यास 'पाहीघर' 1857 के विद्रोह पर आधारित है। यह उपन्यास किसानों की बदहाजी ओर जमींदारी व्यवस्था को उद्घाटित करता है। 'पाहीघर' की कड़ी 'बेदखल' उपन्यास तालुकेदारों और जमींदारों के अत्याचारों और किसानों की विवशता और दुःख को प्रकट करता है। 'बेदखल' उपन्यास छोटी जोत वाले और पिछड़े तथा दलित कहे जाने वाले किसान तथा खेतिहर मजदूरों की व्यथा–कथा कहता है। यह उपन्यास इस बात को स्पष्ट करता है कि किसानों का आंदोलन किसानों के दम और पैसों पर ही चलेगा।

श्याम बिहारी श्यामल का उपन्यास 'धपेल' में पलामू जिले के अकाल–सूखा प्रसंग को केंद्र में रखकर रचा गया है। अन्याय, उत्पीड़न, शोषण, बंधुआ मजदूरी, सूखा, भुखमरी, जंगलों की अवैध कटाई, पशु तस्करी जैसे क्रूरतम अमानवीय कृत्यों द्वारा धन उगाहने लूटने की प्रवृत्ति का अत्यधिक प्रयोग हो रहा है और पूरे पलामू जिले में दिन–प्रतिदिन बढ़ता जाता है। जिससे पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों के सीधे, भोले, ईमानदार लोग खत्म होते जा रहे हैं।

नीलकांत द्वारा लिखित उपन्यास 'एक बीघा खेत' चकबंदी और सीमांत किसान की कथा कहता है। इसके पहले ही नीलकांत 'बंधुआ रामदास' उपन्यास लिख चुके थे। बंधुआ मजदूरी पर लिखे इस उपन्यास में भूमिहीन बटाही पर लेकर खेती करने वाले पुरुषोत्तम नामक स्वावलंबी किसान द्वारा जमींदार से 51 रुपय का उधार लिए जाने की कथा है। उसके दो बेटों रत्तन और मत्तन इस उधार लिए पैसों को भरने में लगे रहते हैं। इस उपन्यास में तीन पीढ़ियों की अर्थात खेतिहर मजदूर की व्यथा कथा है।

कुर्मेंदु शिशिर का उपन्यास 'बहुत लंबी राह' भूमिहीन खेतिहर मजदूर महतो की व्यथा–कथा कहता है। ग्रामीण समाज की विकृतियों, क्षुद्रताओं और संघर्षों का जीवंत प्रस्तुत करता है। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा खत्म हो गयी लेकिन व्यवहारिक स्तर पर पूरी तरह से जमींदारों का खात्मा नहीं हुआ। पुराने जमींदार और नए धनी लोब बड़े किसान के रूप में छोटे किसानों का शोषण करने लगे। अतः भूमिहीनों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। गाँव के पोखर और गैरमजरूआ जमीन पर भी मालिकों का कब्जा बना ही रहा। उपन्यास के मूल में सामाजिक–आर्थिक विषमता है।

प्रेमचंद जमींदारों और खेतिहर मजदूर को किसान नहीं मानते थे जबकि ये दोनों ही कृषि व्यवस्था के ही अंग थे। रामविलास शर्मा लिखते हैं, ''हिंदी में किसानों की समस्याओं पर अधिक उपन्यास लिखे ही नहीं गए जो लिखे गए हैं उनमें प्रेमचंद की सूझ–बूझ का अभाव है।''[7]

प्रेमचंद के उपन्यासों में किसान जीवन को तथा गाँव को केंद्र में रखकर अनेक समस्याएँ चित्रित हैं। इन समस्याओं का समाधान भी है। भले ही वह समाधान तत्कालीन स्थितियों के अनुकूल सिद्ध नहीं हो पा रहा है। प्रेमचंद को आपत्ति थी कि क्या यह शर्म कि बात नहीं कि जिस देश में नब्बे फीसदी आबादी किसानों की हो, उस देश में कोई किसानों की भलाई का प्रयत्न नहीं करता। प्रेमचंद किसानों की गरीबी का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा और लगान को मानते थे। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा तथा लगान दोनों ही समाप्त हो गए। आज किसानों को सस्ते दर पर ऋण प्रदान करने के लिए व्यावसायिक बैंक भी है। सिंचाई की व्यवस्था भी हो रही है। उन्नत किस्म के बीज भी दिए जा रहे हैं। कृषि में वैज्ञानिक यंत्रों का प्रयोग भी हो रहा है। फिर किसान आत्महत्या कर रहा है। यह एक विचारणीय प्रश्न है?

किसानों की समस्याएँ तब भी वैसी ही बनी हुई थीं, जैसी आज हैं। वर्तमान में भी धीरे–धीरे महँगाई बढ़ती जा रही है लेकिन किसानों की आय में कोई इजाफा नहीं हुआ है। किसानों के अनाजों के मूल्य हमेशा कम ही रहे। अब सरकार के विकास की प्राथमिकता गाँव नहीं शहर हैं। कृषि की जगह उद्योग को बढ़ावा दिया जा रहा है। उद्योग के नाम पर किसानों की ज़मीनें जबरदस्ती सरकार द्वारा अधिग्रहीत कर उद्योगपतियों को कौड़ियों के दाम पर दी जा रही है। अब परम्परागत

बीज समाप्त हो गए। किसान फसलों से बीज भी नहीं तैयार कर सकते, क्योंकि हाइब्रिड बीज बाजार में उपलब्ध है। जिससे अधिक उत्पादन होगा। इन बीजों की कीमत अधिक है। इसके लिए अत्यधिक कीटनाशक, पानी और रासायनिक खाद की भी आवश्यकता होती है। किसान दूसरों की मर्जी से खेती–किसानी करने को विवश हो गया है। यह एक क्रूर समय है।

आज के लेखक के सामने प्रेमचंद का समय, ग्राम और जीवन नहीं है, इसलिए शायद उनको प्रेमचंद होना कठिन है, किन्तु इतना संतोष है कि प्रगतिशील, जनवादी लेखक अपनी लेखकीय प्रतिबद्धताओं के साथ आज भी किसानों की समस्याओं को लेकर लगातार अपनी लेखनी के साथ उपस्थित हैं।

संदर्भ

1. मैनेजर, पांडेय. संपत्ति शास्त्र (प्रस्तावना से). केंद्रीय हिंदी निदेशालयः दिल्ली. पृष्ठ **14.**
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (2003). हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास. राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0ः नई दिल्ली. पृष्ठ **229.**
3. शर्मा, रामविलास. प्रेमचंद और उनका युग. पृष्ठ **55.**
4. प्रेमचंद. गोदान. पृष्ठ **309.**
5. प्रेमचंद. गोदान. पृष्ठ **138.**
6. शर्मा, रामविलास. प्रेमचंद और उनका युग. पृष्ठ **171.**
7. शर्मा, रामविलास. (1993). प्रेमचंद और उनका युग. राजकमल प्रकाशनः नयी दिल्ली. पृष्ठ **44.**